अथर्ववेद में कृषिविज्ञान

Sudhir Kumar Pathak

Department of Sanskrit, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapeeth, Varanasi

Abstract

The farming science i.e. Agriculture science has been the milestone of the Vedic people. The Aryans know the importance of farming. The Atharvaveda is full of the description of farming. The 'Kavi' and 'Dheer' persons used to be involved in farming. This was the means of attaining happiness and joy. It was the main source of earning and making money as well. The resource of earning has been named as 'Upjeeva' in Taittiriya Brahmana. The T.B. clearly mentions farming as instrumental for human welfare. It is through agriculture that man earns grains, vigour and rearing. Krishi & agriculture has been called 'Chhandi' in Taittiriya Samhita. It means that agriculture brings joy in the life of a man. It encompasses man with joy and happiness. In he 'Akshasukta' of Rigveda, the emphasis is given on 'Krishi' only categorizing it the best among all the works.

अथर्ववेद में कृषि का अत्यधिक महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। कृषि का कार्य सुयोग्य व्यक्ति करते थे। कवि तथा धीर व्यक्ति इस कार्य को अपनाते थे और कृषि करते थे। कृषि का कार्य सुख-प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता था।[१] यही आजीविका तथा अर्थोपार्जन का मुख्य साधन था। तैत्तिरीयब्राह्मण में आजीविका के साधन का 'उपजीवा' नाम दिया गया है।[२] यजुर्वेद की तैत्तिरीयसंहिता में कृषि को मानवीय कल्याण का साधन माना गया है।[३] कृषि ऐश्वर्य और पोषण का साधन है।[४] कृषि से ही अन्न, बल और तेज की प्राप्ति होती है।[५] तैत्तिरीय संहिता में कृषि को छन्द कहा गया है।[६] जिसका अभिप्राय यह है कि कृषि जन-जीवन को आनन्दमय बनाने वाला संगीत है। यह मानव को सुखों से आच्छादित रखता है अतः यह छन्द है। ऋग्वेद के अक्षसूक्त में कृषि को उत्तम कार्य बताते हुए एक जुआरी से कहा गया कि द्यूतक्रीड़ा छोड़ो और परिवार की भलाई के लिए कृषि करो-

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः।

तत्र गावः कितव! तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः।।[७]

अथर्ववेद में राजा पृथि वैन्य को कृषि विद्या का आविष्कारक या जन्मादाता बताया गया है। उन्होंने ही सर्वप्रथम कृषि तथा अन्न को उत्पन्न किया। इन्होंने[८] ही सर्वप्रथम कृषि के लिए पथरीली भूमि को जोतकर समतल बनाया और कृषि का कार्य किया।[९] अथर्ववेद में ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि देवताओं ने सरस्वती नदी के तट पर जौ की खेती को तैयार किया था। इसमें इन्द्र को सीरपति (हल का स्वामी) तथा मरुत् को देव-कृषक कहा गया है।[१०]

वेदों में किसान के लिए 'कीनाश' शब्द आया है।[११] किसान भूमि को जोतते थे और बीज बोने का काम करते थे। अथर्ववेद में किसान के लिए 'कार्षीवण' शब्द भी आया है। इनको 'अन्नविद्' अर्थात् अन्न का विशेषज्ञ कहा गया है।[१२] किसान क्षेत्र का स्वामी तथा क्षेत्रापति होता था क्योंकि किसान के लिए 'क्षेत्रस्य पतये' का प्रयोग भी प्राप्त होता है जिससे ज्ञात होता है कि किसान कई खेतों का स्वामी हो सकता था।[१३] अथर्ववेद के एक मन्त्र में 'क्षेत्रस्य पत्नी' भी आया है[१४] जिससे ज्ञात होता है कि खेत की स्वामिनी स्त्री भी हो सकती थी।

उपर्युक्त सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि अलग-अलग खेतों के अलग-अलग स्वामी होते थे।

अथर्ववेद में भूमि के विविध भेदों का उल्लेख प्राप्त होता है। इसमें भूमि के तीन प्रकार बताये गये हैं। उर्वरा (उपजाऊ), इरिण (उषर) और शब्य (चरागाह-योग्य भूमि)[१५] कृषि की दृष्टि से भूमि के दो भेदों का उल्लेख मिलता है। पहला कृष्टपच्य-जिस भूमि को जोतकर कृषि द्वारा अन्न को उत्पन्न किया जाता था, उसे कृष्टपच्य भूमि कहा जाता था, दुसरा अकृष्टपच्य-जिस स्थान पर बिना कृषि-कार्य किये अन्न स्वयं ही उत्पन्न हो जाता था उसे अकृष्टपच्य भूमि कहा जाता था। जैसे जंगली फल-फूल आदि।[१६]

अथर्ववेद में मिट्टी के कतिपय भेदों की चर्चा की गयी है जिसमें चिकनी मिट्टी, सामान्य मिट्टी, पथरीली मिट्टी, कंकड़ाली मिट्टी, उसर मिट्टी, उर्वर मिट्टी तथा बलुई मिट्टी आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।[१७]

अथर्ववेद में कृषि के दो भेद बतलाये गये हैं एक वर्ष्य

Vijnana Bharati

दूसरा अवर्ष्य। वर्ष्य अर्थात् जो कृषि वर्षा पर निर्भर होती थी उसे वर्ष्य कहा जाता था। तथा जिसकी नहर, कूप, तालाब आदि से सिंचाई की जाती थी उसे अवर्ष्य कहा जाता है।[१८]

अथर्ववेद के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय अधिकांशतः कृषि-कार्य वर्षा पर आधारित था। इसलिए इसमें वर्षा के लिए देवताओं से प्रार्थनाएँ कि गयी हैं।

शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम् यद् दिवि
चक्रथुः पयस्तेमामुप सिञ्चतम्।[१९]

अथर्ववेद में वर्णित कृषि की प्रक्रिया तथा वर्तमान कृषि-प्रक्रिया में पर्याप्त साम्य है। सर्वप्रथम कृषि के योग्य भूमि को हल से जोता जाता था और उसे बीज बोने के योग्य बनाया जाता था, जैसा कि अथर्ववेद में कहा गया है-

शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनुयन्तु वाहान्।
शुनासीरा हविषा तोशमान् सुपिप्पला ओषधि कर्तमस्मै।।[२०]

कृषि के योग्य भूमि को उर्वरा या क्षेत्र कहा जाता था।[२१]

बैलों को रस्सी से बाँधकर उन पर जुआ रखा जाता था और जुती हुई भूमि में बीज बोया जाता था।

युनक्त सीरा वि युगा तनोति कृते योनौ वपतेह बीजम्।
विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीयं इत सृण्यः पक्वमा यवन्।।[२२]

कृषि की भूमि अधिक उपजाऊ बनाने के लिए खाद का प्रयोग किया जाता था। यह खाद प्रायः गाय तथा बैल के गोबर की होती थी।[२३] खाद को फलवती कहा गया है।[२४]

बीज बोने के बाद खेतों की सिंचाई की जाती थी। सिंचाई का महत्व बताते हुए कहा गया है कि कृषि के लिए जल घृत के तुल्य है।[२५] बुवाई और सिंचाई के बाद निराई को भी आवश्यक बताया गया है। इसमें खेत से अनावश्यक तृण आदि को हटाकर फसल की रक्षा की जाती थी। फसल के पक जाने पर दँतारी से खेती को काटा जाता है।[२६] कटे हुए अन्न को पुलिया (वर्ष) में बाँधा जाता था और उन्हें खलिहान में इकट्ठा करके मड़नी की जाती थी।[२७] मड़नी से अनाज का डंठल अलग हो जाता था मड़नी के बाद उसे उसाया जाता था।[२८]

अनाज को मूसल से ओखली में कूट-कर साफ करने का भी वर्णन किया गया है।[२९] साफ किये हुए अनाज को बर्तन से नापकर कोठलों में रखते थे। इसे नापने के बर्तन को 'ऊर्दर' कहते थे।[३०] बड़े कोठले को, जिसमें अनाज भरा जाता था उसे स्थिवि कहते थे।[३१]

अथर्ववेद में कृषि के साधनों का भी वर्णन मिलता है। अथर्ववेद में हल, सीता, फल तथा शुनासीर का नाम उल्लेखित किया गया है। इसमें हल के लिए लांगल तथा सीर शब्द का प्रयोग किया गया है।[३२] हल के अगले नुकीले भाग के लिए सीता और फाल शब्द का प्रयोग किया गया है।[३३] सीता शब्द कृषि के देवता के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। शुनासीर हल की लकड़ी और फाल को कहा जाता था।[३४]

हल में जो लम्बी लकड़ी लगी रहती थी उसके लिए ईषा शब्द का प्रयोग किया गया है। इसके निचले भाग में लोहे की फाल होती थी। इसके ऊपर जुआ रखा जाता था।[३५] हल और जुए को रस्सी से बाँधा जाता था। किसान जिस चाबुक या छड़ी से बैलों को हांकता था उसके लिए अष्ट्रा शब्द का प्रयोग किया गया है।[३६] बैल के लिए इसमें 'वाह' शब्द का प्रयोग किया गया है। बैल, कृषक, हल और अष्ट्रा उत्तम होने चाहिए जिससे हल को सरलता से चलाया जा सके।[३७] अथर्ववेद में ६,८ और १२ जुओं वाले हलों का वर्णन प्राप्त होता है। एक जुए में दो बैल लगते थे। इसी प्रकार १२,१६,२४ बैलों वाले बड़े-बड़े हल भी कृषि कार्य में प्रयुक्त होते थे।[३८]

अथर्ववेद में कृषि को हानि पहुँचाने वाले तत्त्वों का भी वर्णन मिलता है जिन्हें 'इति' कहा जाता था। ये हैं-अतिवृष्टि और अनावृष्टि। एक मन्त्र में अतिवृष्टि और अनावृष्टि को खेती के लिए हानिकारक होने का संकेत करते हुए कहा गया कि-बिजली खेती पर न गिरे और सूर्य की किरणें उसे नष्ट न करें।[३९] अतिवृष्टि के साथ विद्युत्-पात तथा वर्षा के अभाव में सूर्य की कठोर किरणें खेती को नष्ट करती हैं। एक मन्त्र में अवृष्टि को दूर करने के लिए प्रार्थना की गयी है कि आकाश से जल की धाराएँ पृथिवीं को तृप्त करें।[४०] अनावृष्टि की अवस्था भी खेती को नष्ट करती हैं। घोर हिमपात या पाला पड़ना भी खेती को हानि पहुचाँता है अतः सूर्य की कड़ी धूप और हिमपात खेती को हानि न पहुँचाये, इसलिए अनेक मन्त्रों में प्रार्थनाएँ की गयी हैं।[४१] अथर्ववेद में कृषि-नाशक तत्त्वों में आखु (चूहे) का नाम मुख्य रूप से लिया गया है। इसके बचाव का उपाय बताते हुए कहा गया है कि आखु का शिर फोड़ देना चाहिए तथा उसकी कमर तोड़ देनी चाहिए, साथ ही उसका मुँह बन्द कर देना चाहिए जिससे जौ आदि धान्य बचाया जा सके।[४२] इसमें कृषि को नष्ट करने वाले चार अन्य जीवों का भी नाम उल्लेख किया गया है, जिसमें तर्द (कदफोड़वा) टिड्डियाँ,

Vijnana Bharati

उपावस, व्यद्वर।[४३] कृषि को नष्ट करने के कारण इन्हें तर्दापति, वघापति, तृष्टजम्भ कहा गया है।[४४]

अथर्ववेद से सिंचाई के साधनों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इसके दो सूक्तों में वर्षा के महत्त्व का वर्णन करते हुए वर्षा को सिंचायी का मुख्य साधन माना गया है।[४५] वर्षा के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि वर्षा के द्वारा पृथ्वी पुष्ट हो तथा उस जल से सभी प्रकार से अन्न एवं औषधियाँ उत्पन्न हों। कई मन्त्रों में उत्तम कृषि के लिए वर्षा की उपयोगिता बतलायी गयी है।[४६]

अथर्ववेद में पाँच प्रकार के जल का वर्णन है-१. धन्वन्य (देशीय जल), २. अनूप्य (तालाब आदि का जल) , ३. खनित्रिम (खोदे हुए कुएँ का जल) और ४. वार्षिक (वर्षा का जल) ५. नदियों का जल।[४७]

अथर्ववेद में यव, माष, व्रीहि और तिल-इन अनाजों का उल्लेख प्राप्त होता है।[४८] इसमें जौ का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि उस समय जौ की खेती अधिकाधिक होती थी। इस प्रकार जौ सबसे प्राचीन अन्न है। इसमें जौ की उत्तम खेती का वर्णन किया गया है। जौ से अनेक शारीरिक रोगों को दूर करने का वर्णन है।[४९] जौ के साथ चावल का भी प्रमुख खाद्यों में उल्लेख प्राप्त होता है।[५०] जौ और चावल को दिव्य औषधि तथा ईश्वरीय देन कहा गया है।[५१]

इन दोनों अन्नों को ज्वर तथा यक्ष रोग-नाशक तथा पुष्टिकर माना है।[५२] इसमें ईख का उल्लेख भी प्राप्त होता है। इससे प्रतीत होता है कि गन्ने के रस से बनने वाला गुड़ आदि वस्तुओं का तत्कालीन समाज में प्रयोग होता था।[५३]

अतः इस प्रकार अथर्ववेदकालीन कृषि सम्बन्धित विषयों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में कृषि का अत्यधिक महत्त्व था। उस समय कृषि ही मुख्य रूप से लोगों के जीविकोपार्जन तथा अर्थोपार्जन का साधन था। कृषि को करने के लिए पढ़े-लिखे तथा विद्वत्समाज का सहयोग प्राप्य था। कृषि के लिए वर्षा तथा कृत्रिम जल, तालाब, कुएं आदि का प्रयोग किया जाता था। अतः कहा जा सकता है कि अथर्ववेद-कालीन समाज में कृषि अपनी चरम अवस्था पर थी।

संदर्भ :

१. सीरा युञ्जन्ति..... धीरा देवेषु सुम्नयौ। अ. ३.१६.१

२. तै०ब्रा० १.५.६.४

३. कृपयै त्वा पोषाय त्वा। यजु. ९.२२ तै.स. ४.३.६.२

४. रय्यै त्वा पोषय त्वा। यजु. ९.२२

५. वर्चसे त्वा, ओजसे त्वा, वलाय त्वा। तै.स. ४.३.७.३

६. कृषि छन्दः। तै.स. ४.३.६.१

७. ऋग्वेद। १०.३५.७

८. तां पृथी वैन्योऽधोक, तां कृषि च सस्य चाधाक्। अ.८.१.४.११

९. भागवत पु.स्कन्ध ४, अध्याय १६-१३

१०. यवं सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः। अ. ६.३०.१

११. शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान्। अ. ३.१६.५

१२. कार्षीवणां अन्नविदः। अव. ६.११६.२

१३. क्षेत्राणां पतये नमः यजु. १६.१८

१४. क्षेत्रस्य पत्नी। अ. २.१२.१

१५. यथा बीजभुर्वराया कृष्टे फालेन रोहति। अ. १०.६.३३

१६. अकृष्टपच्ये अशने धान्ये यः। अ.स. ५.२९.७

१७. मृत्तिका। यजु. १८.१३.तैत्रि स. ४.७.५.१

१८. वर्ष्याय चावर्ष्याय च। यजु. १६.३८ तै.स. ४.५.७.२

१९. अ. ३.१७.६

२०. अ. ३.१७.५

२१. यथा वीजमुर्वरायाम.। अ. १०.६.३३

२२. अ. ३.१७.२

२३. करीषिणीम्। अ. १९.३१.३

२४. करीषिणी फलवती स्वधाम.। अ. १९.३१.३

२५. आपः चिदस्मै घृतमित क्षरन्ति। अ. ६.१८.२

२६. यथा दान्ति अनुपूर्व वियूय। अ. २०.१२५.२

२७. सृण्यः पक्वमायवन्। अ. ३.१७.२

२८. खेल न पर्षान प्रति हस्मि-ऋग् १०.४८.७

२९. वि विच्यध्वं.....तुषै। अ. ११.१.१२

३०. मुसलम् .....उलूखलम्। अ. ११.३.३

३१. उर्दरम्। ऋग्-२.१४.११

३२. यवमिव स्थिविभ्यः। ऋग् १०.६८.३

३३. सीता.। अ. ३.१७.८ सुफाला। अ. ३.१७.५

३४. शुनाशीस. १२.१७.४

३५. ईषायुगेभ्यः। अ. २.८.४

३६. शुनम अष्ट्राम उदिङ्गय। अ. ३.१७.६

३७. शुनं वाहाः। अ. ३.१७.६

Vijnana Bharati

३८. इमं यवम् अष्टयोगे। अ. ६.९१.६

३९. मा नो बधीर्विधुता देव, सस्य मोत वधी रश्मिभि सूर्यस्य। अ. ७.११.१

४०. अ. ७.१८.१

४१. न ध्रंस्तताप न हिमा जधान। अ. अ. ७.१८.२

४२. हतं तर्द समडूकम आखु। अ. ६.५०.१

४३. तर्द है पतङ्ग है जम्य हि उपक्वस। अ. ६.५०.२

४४. तर्दापते वघापते तृष्टमाग्भा. अ. ६.५०.३

४५. अ. ४.१५.१८

४६. वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमि जायन्ताम् ओषधयो विश्वरूपा। अ. ४.१४.२

४७. अ. ४.१५.२ से ११, १६

४८. रां न आपो.....अनूप्या। खनित्रिमा वार्षिका। अ. १.६.६४। सिन्धुभ्यः १.४

४९. व्रीहिमन्तं यवमत्तम अथो.। अ. ६.१४.२

५०. तेना ते तन्वो रपोऽपाचीनमप व्यये। अ. ६.१९.१

५१. व्रीहियवौ। अ. ८.२.१८, १२.१.४२

५२. व्रीहियवौ। अ. ८.२.१८, १२.१.४२

५३. इक्षुणा। अ. १.३८.५

Vijnana Bharati